International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(3): 32-35

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(3): 32-35
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-03-2021
Accepted: 19-04-2021

नीलम के सोनाणी
शोध छात्रा, संस्कृत, महाराजा कृष्णाकुमारसिंहजी भावनगर यूनिवर्सिटी, भावनगर, गुजरात, भारत

Corresponding Author:
नीलम के सोनाणी
शोध छात्रा, संस्कृत, महाराजा कृष्णाकुमारसिंहजी भावनगर यूनिवर्सिटी, भावनगर, गुजरात, भारत

पुराणों में अर्थ पुरुषार्थ

नीलम के सोनाणी

प्रस्तावना

मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य है -सुख की प्राप्ति। वह विभिन्न उपायों द्वारा सुख के साधनों का एकत्रीकरण चाहता है। उसकी यही वृत्ति उसे दुख की ओर ले जाती है । मनुष्य के कर्मों का विधान धर्म और जीविकोपार्जन के लिए किया गया है। इनमें पुरुषार्थ चतुष्टय का त्री-वर्ग धर्म, अर्थ और काम संग्रहित हो जाता है ।जब यह त्री-वर्ग शुद्ध मन से उपसेवित होते है तब नि:श्रेयस की प्राप्ति में सहायक बनते है । उसमें प्रथम त्री-वर्ग साधन है और मोक्ष साध्य है । इसका यथोचित संपादन करना ही मानव मात्र का धर्म है।

पुराणों की ओर दृष्टिपात करने से विष्णु पुराण ब्रह्मवैवर्त पुराण, गरुड़ पुराण, भागवत पुराण, मत्स्य पुराण देवी भागवत पुराण आदि में पुरुषार्थ का व्यापक वर्णन मिलता है । विष्णु पुराण पुरुषार्थ का महत्व वर्णित करते हुए कहां गया है-

"सर्वे एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्ध्मा:।
तथापि पुसां भाम्यानि नोद्ध्मा भूति हेतवः।।
वि.पु.१.१९.४४

पुरुषार्थ चतुष्ठय

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन के सभी अभिष्टो में मुख्य आभिष्ट चार ही बताए हैं, इन्हें पुरुषार्थ कहा गया है- "पुरुषैः अर्थ्यते इति पुरुषार्थ" जो पुरुष द्वारा चाहा जाए वो अभिलाशित विषय ही पुरुषार्थ है। इस दृष्टि से प्रायः संसार के समस्त विषय इस परिधि में आ जाते हैं। लेकिन तात्विक रुप से विचार करने पर चार प्रमुख साध्य ही मनुष्य के समक्ष उपस्थित होते हैं,

यह साध्य है- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। साहित्य और संस्कृति में समान रूप से चतुर्वर्ग की प्रतिष्ठा रही है। इनमें धर्म और मोक्ष का स्थान सर्वोपरि है इनको संपादन करने की शक्ति पुरुष में ही विद्यमान है अन्य सभी जीव इनका संपादन नहीं कर सकते, अतः इसे पुरुषार्थ कहा जाता है। मनुष्य जिन जिन सुखों की कामना करता है वे किसी न किसी रूप में इस चतुर्वर्ग में ही समाविष्ट होते हैं । कोई मनुष्य 'धर्म 'को लक्ष्य करता है, कोई' काम 'को चाहता है, है कोई 'धन' की कामना करता है, तो किसी का लक्ष्य केवल मोक्ष प्राप्ति होता है।

मत्स्य पुराण में पुरुषार्थ का महत्व बताते हुए कहा गया है_"अलसी और भाग्य पर भरोसा रख कर बैठे रहने वाले पुरुष कभी भी अपने मनोरथ को सफल नहीं कर पाते इसीलिए मनुष्य को हमेशा पुरुषार्थ शील रहना चाहिए भाग्य पर भरोसा रख कर बैठने वाले आलसी मनुष्य को छोड़कर लक्ष्मी सर्वदा प्रयत्नशील तत्पर पुरुषार्थी मनुष्य को ढूंढ कर उनका वरण करती है।"[१] यहां पर पुरुषार्थ को कर्म के रूप में देखा गया है।

अर्थ का महत्व

व्यवहारिक जीवन में अर्थ मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार पर्वतों से अनेकों नदियां निकलती है वैसे ही न्यायोचित अर्थ को भली-भांति बढ़ाकर उसे तत संबंधी उपयोगी कार्यों में लगा देने पर उससे धर्म संबंधी क्रियाओं का पालन- पोषण होता है। मनुष्य के समस्त क्रियाएं अर्थ मूलक है । अतः उसके उपार्जन में प्राणी को महान प्रयत्न करना चाहिए । महर्षि शुक्राचार्य का कथन है की-" निर्धन मनुष्य चाहे कितना ही गुणवान क्यों ना हो, तो भी उसकी स्त्री, पुत्र और परिजन उसका कुछ भी आदर नहीं करते और उसका परित्याग कर देते हैं। अतः संसार में व्यवहार के लिए धन का बहुत महत्व है, मनुष्य को सत-उपायों द्वारा अर्थ का उपार्जन अवश्य करना चाहिए।"[3]

इसी भाव को गरुड़ पुराण में अभिव्यक्त किया गया है-

> "यस्यार्थास्तस्य मित्रणी यस्यार्थास्तस्य बंधवा:।
> यस्यार्था: स पुमान्लोके यस्यार्था: स च पंडित: ।।"
>
> ग.पु.६७.१७.

अर्थात "सभी उसी के मित्र बनते हैं सभी बांधवगण उसी के पास होते हैं जिसके पास धन होता है, वही पुण्य शाली और महा पंडित माना जाता है । " जो धनहीन हो जाते हैं उन्हें मित्र छोड़ कर चले जाते हैं। मित्र ही नहीं धनहीन व्यक्ति को पुत्र और सुहृयज्जन त्याग देते हैं और अन्य किसी अर्थ-संपन्न का आश्रय लेते हैं । अतः इस लोक में मात्र अर्थ ही पुरुष का बंधु एवं सर्वस्व है। अर्थ की व्याप्ति के लिए मनुष्य को मेहनत करनी पड़ती है इस मेहनत के रूप में पुरुषार्थ का महत्व भागवत पुराण की आंखें स्कंध में समुद्र मंथन प्रसंग के माध्यम से मनुष्य जाति में परिश्रम का महत्व समझाया गया है।[२] मानव जीवन समुद्र मंथन समान है उसने सुख-दुख रूपी रत्न उत्पन्न होते रहते हैं अनुकूल और प्रतिकूल प्रसंग में शिव की भांति प्रतिकूल प्रसंगों को अपने अंदर ही फिर करना सीखना चाहिए।

द्वितीय पुरुषार्थ के रूप में अर्थ की सार्थकता

पुरुष का द्वितीय पुरुषार्थ अर्थ है जो उसके भोग, आरोग्य और धर्म का मुख्य साधन है। अर्थ का अभिप्राय अभिलिषित वस्तु से है।अर्थ को सभी प्राणी प्राप्त करना चाहते हैं। जैसे स्त्री के बिना गृहस्थ जीवन नहीं होता वैसे ही अर्थ के बिना धर्म और मोक्ष भी सिद्ध नहीं होते। सबसे दुर्लभ पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति, अर्थ के द्वारा अर्जित धार्मिक कार्यों के पुण्य फलों से ही संभव है ।

अर्थ में सबसे उत्तम गुण आकर्षण का होता है। और अर्थयुक्त प्राणी के पास गुणीजन भी किंकरो की

भांति पहुंच जाते हैं । इसके साथ ही अर्थवान के अवगुण भी गुण बन जाते हैं । नीति शतक में भ भतृहरि ने सत्य कहा है -

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डित: स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ती।। नितिशतक ३३

अर्थ में वह अलौकिक सामर्थ्य है जो सभी को वशीभूत कर लेता है लेकिन स्वयं किसी के वश में नहीं होता। प्राणी अर्थ का दास बन जाता है परंतु अर्थ किसी का दास नहीं बनता अतः मनुष्य को अर्थ उपार्जन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।

वस्तुतः प्राणियों की सुख समृद्धि का मूल है धर्म और धर्म का मूल है अर्थ । आचार्य चाणक्य ने कहा है-" सुखस्य मुलं धर्म:। धर्मस्य मुलं अर्थ: ।" वास्तव में अर्थ वृत्ति मूल है । इसी पर व्यक्ति की आजीविका निर्भर है ।त्री-वर्ग की गणना में अर्थ को 'देहली- दीपक' न्याय के अनुसार धर्म और काम दोनों के मध्य में रखा गया है । क्योंकि अर्थ के बिना धर्म और काम दोनों ही अपूर्ण है । अर्थ का वास्तविक फल धर्म है और काम उसका गौण फल है। अतः अर्थ का उपार्जन करके उसका विनियोग धर्म में करना चाहिए ना केवल काम में यह अमूल्य मणि को छोड़कर कांच ग्रहण करने जैसी मूर्खता है। श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित है कि -

"नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कमो लाभाय हि स्मृत: ।"
भा.पु.१.२.९.

पौराणिक शासन व्यवस्था में अर्थ एक इकाई के रूप में

साहित्य समाज का दर्पण होता है । जो समस्या जिस युग में समाज के सामने प्रमुख रहती है वही उस युग के ग्रंथों में मुख्य रूप से अंकित हो जाती है। प्राचीन भारत में आर्थिक नियमों का आधार आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता था । पुराणों का अध्ययन करने से विदित होता है कि उस समय अर्थ अपने शुद्ध रूप में उपस्थित था। स्वल्प संग्रह और स्वल्प व्यय करना ही समीचीन माना जाता था। अर्थ की धारणा धर्म परायण थी अतः दान का विस्तृत उल्लेख पुराणों में मिलता है । जो व्यक्ति धन का उपयोग दान में करता है वह मानव धर्म की सर्वश्रेष्ठ गति का उपयोग करता है।

पौराणिक शासन का मुख्य उद्देश्य समाज के लिए सुयोग्य परिस्थितियों की प्रतिष्ठा करना और विपरीत परिस्थितियों का उन्मूलन करना था । इसके लिए राज्य और राजा के स्वरूप को स्वीकार किया गया, राज्य का स्वामी राजा होता था जो सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के दमन के लिए क्रियाशील रहता था । शासन व्यवस्था को शुद्ध रूप प्रदान करने के लिए राज्य के संचालन में स्प्तांगो का उल्लेख मिलता है, इन स्पतांगो का नियमन और संचालन राजा द्वारा ही किया जाता था। इस संपूर्ण कार्य प्रणाली अर्थ से ही क्रियान्वित होती थीं, अतः अर्थ शासन व्यवस्था का एक अभिन्न अंग था।

सांप्रत समय में अर्थ पुरुषार्थ

पुरुषार्थ की श्रंखला में अर्थ की दृष्टि भी बदल गई है ।आज बिना उत्किच यानी रिश्वत के कोई कार्य सिद्ध करना मुश्किल है । धन प्राप्ति के और अधार्मिक कृत्यों को स्वीकार किया जा रहा है। व्यक्ती की भौतिक तृष्णा का कहीं कोई अंत नहीं है। संसाधनों को एकत्रित करने की साधना व्यक्ति को अनैतिक कार्यों की ओर प्रेरित करती हैं। धर्म युक्त अर्थ की कल्पना तो अब मात्र आदर्श बनकर रह गई है। व्यक्ति की सदाचार में निष्ठा समाप्त हो रही है। फलत: वह धर्म विहीन अर्थ के एकत्रीकरण में प्रतिस्पर्धा कर रहा है।

एइक्किसवीं सदी में अर्थव्यवस्था की असर कुटुंब व्यवस्था पर हुई है। अर्थ प्राप्ति के लिए मनुष्य अपने परिवार, गांव, देश, को छोड़कर पर प्रांत में स्थानांतरण करता है। धर्म, काम और मोक्ष इन तीन पुरुषार्थ को मनुष्य गुण मानने लगा है, और अर्थ को सबसे महत्वपूर्ण मानने लगा है।

पौराणिक समय की तरह हाल में भी व्यक्ति अपनी आवक पर कर देता है, और इससे देश का व्यवस्थापन होता है।

'कार्ल मार्क्स' जैसे समाजवादी व्यक्ति और समाज में आर्थिक समानता लाने के लिए प्रयत्न किए। समाज में धनिक वर्ग और मजदूर वर्ग के बीच के संघर्ष की सुलझाने का प्रयत्न कार्ल मार्क्स के द्वारा किया गया।

अद्यतन युग में आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । उसके उपाय के रूप में पौराणिक अर्थव्यवस्था, राज व्यवस्था में से उचित उपाय अर्जित करके समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है।

सुख संपत्ति चाहने वाले मानव को धर्म पूर्वक अर्थ का उपार्जन करके उसके तीन विभाग करने चाहिए। उनमें से एक भाग से धार्मिक और आर्थिक कार्यों का संपादन करना चाहिए, दूसरे भाग से अपने काम विषयक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए और तीसरे भाग को ऐसे कार्यों में लगाना चाहिए जिससे। अर्थ की अभिवृद्धि होती रहे । अतइए जो प्राणी उचित मार्ग से अर्थ- उपार्जन करके उचित रीति से ही उसका उपयोग करना जानते हैं उनको अर्थ से धर्म और धर्म से सुख प्राप्त होता है।

"अन्यो न दृष्टः सुखदो हि मार्गः
पुराण मार्गो हि सदा वरिष्ठः।
शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति
सूर्येण हीना एव जीवलोका ।।"
शिवपुराण उमासंहिता अ३३

पादटीप

1. त्यकत्या अलसा न्दैवपरान्मनुष्यानुत्था-
   नाधुक्तान्पुरुषान्ही लक्ष्मी।
   अन्विष्य यत्नाड्टणुयान्नृपेन्द्र
   तस्मात्सदोत्थानवता हिभालयम् ।। मत्स्य पुराण २२१.१२
2. एवं सुरासुरगनाः समदेशकाल
   हेत्वर्थ कर्मजातयो फले विकलपाः।
   तत्रामृतम् सुरगणाः फलमन्जसाडडपु-
   र्यत्पादपंकजराजः श्रयणान्न दैत्याः।।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पुराण विमर्श- आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. चौखंभा संस्कृत सीरीज वाराणसी
3. श्रीमद्भागवत महापुराण-गीता प्रेस गोरखपुर
4. मत्स्य पुराण-प्रकाशक नंदलाल भोर कोलकाता १९५४
5. विष्णु पुराण- गीता प्रेस गोरखपुर